

बिहार के लोक-संगीत को जानें

लोक-संगीत किसी भी समाज की संस्कृति का प्रमुख अंग है। आदिकाल से गीतों की शीतल धारा प्रवाहित होती रही है, जिसकी अभिव्यक्ति से मानव के मन-प्राण शीतल और सरल बन जाते हैं। जीवन की प्रारंभिक अवस्था में मानव ने जब प्रकृति की विविधताओं और विचित्रताओं को देखा होगा तो उसके सोए भाव जागे होंगे और अनायास ही उसने अपने अधरों पर उस भाव को गुनगुनाकर गीत का रूप दिया होगा। अतः आदिमानव के सहज, स्वाभाविक एवं लयात्मक ढंग से प्रस्फुटित होनेवाले आंतरिक आवेगों ने ही लोकगीत या लोक-संगीत का रूप धारण कर लिया। लोक-संगीत अपनी आरंभिक अवस्था में मानवों के आकुल उद्गार तक ही सीमित रहे, परंतु कालचक्र में पड़कर धीरे-धीरे सामाजिक जीवन के निकट आते गए। यही कारण है कि आज लोकगीतों में हम मानव की विभिन्न समस्याओं, प्रथाओं, त्रुटियों एवं विशेषताओं का दर्शन करते हैं।

लोकगीत व्यक्ति विशेष द्वारा निर्मित होते हैं, जो काल-प्रवाह में पड़कर अज्ञात बन जाते हैं और जो सामाजिक संस्कारों के रंग में रँगकर सार्वजनीन हो जाते हैं। इन गीतों की सर्जना में पुरुषों के संग-संग नारियों का अत्यधिक योगदान रहता है। लोकगीतों





का विस्तार कहाँ तक है, इसे कोई नहीं बता सकता। किंतु इसमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परंपराएँ जीवित हैं। श्रुति परंपरा से ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं। अतः इनमें तर्क कम, भावनाएँ अधिक हैं। न इनमें छंद-शास्त्र की लौह-शृंखला है, न अलंकारों की बोझिलता, न इसमें संगीत-शास्त्र का नियमानुशासन है, न ही राग-ताल-लय की दुरूह आबद्धता। इसमें तो लोक-मानस का स्वच्छ और पावन गंगा-यमुना जैसा प्रवाह है। लोकगीतों का सबसे बड़ा गुण यह है कि इनमें सहज स्वाभाविकता एवं सरलता है। इनमें सुख-दुःख, प्रेम और करुणा के विविध रंग हैं। कहीं पुत्र-जन्म के अवसर पर हर्ष-उल्लास के स्वर गूँजते हैं तो कहीं कन्या की विदाई या प्रिय वियोग की वेला में करुणा के गीत मुख्य होते हैं।

भारतवर्ष में गीतों के गायन और श्रवण की सुदीर्घ परंपरा रही है। संभव है कि वैदिक युग के पूर्व भी गीतों का प्रचलन हो, परंतु किसी निश्चित उल्लेख अथवा प्रमाण के अभाव में गीतों का विवेचन वैदिक मूल से ही करना पड़ेगा। सर्वप्रथम ऋग्वेद में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गीत के अर्थ में हुआ है और 'गाथिन' का गायक के रूप में। पारस्कर गृह्य-सूत्र में विवाह संबंधी गाथाओं तथा आश्वलायन गृह्य-सूत्र में सीमंतोन्नयन संस्कार के सुअवसर पर गाए जानेवाले गीतों का उल्लेख मिलता है। प्राचीनकाल में राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि के शुभ अवसरों पर भी गीत गाने की प्रथा का उल्लेख मिलता है। भारतीय गीतों की परंपरा में राजा हाल अथवा शालिवाहन की 'गाथा सप्तशती' का विशेष महत्त्व है, जिसमें तत्कालीन युग में गीत गाने की प्रथा का विवेचन है। भागवतकार ने कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य में राजा नंद के यहाँ गाए जानेवाले गीतों का वर्णन किया है। 'दुर्गा सप्तशती' में महिषासुर-वध के पश्चात् गंधर्वों के गायन और अप्सराओं के नृत्य का उल्लेख है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामराज्य के सुअवसर पर







होनेवाले अप्सराओं के नृत्य एवं गंधर्वों के गान का उल्लेख किया है। संतान-प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा रखने वाले राणा दलीप के घर जब पुत्र का जन्म हुआ तो राजप्रासाद वारांगनाओं के मंगल गान और नृत्य से गूँज उठा। महाकवि हर्ष ने नल की बारात के वर्णन-प्रसंग में गीत गाने की परंपरा का संकेत दिया है। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के आधार पर यह सूचना मिलती है कि राम-जानकी विवाह में मांगलिक अवसर पर जनकपुर में ललनाओं द्वारा नाना प्रकार के मधुर गीत गाए गए थे। मिथिला के अमर गायक कवि कोकिल विद्यापति तो गीतों के मानो साकार रूप ही थे। उनके गीतों ने न केवल मिथिला को, बल्कि समस्त उत्तर भारत की जनता को प्रभावित किया।

बिहार प्रांत भी अन्य कलाओं की तरह संगीत की साधना-स्थली रहा है। बिहार के ही ऋषि याज्ञवल्क्य ने संगीत को मुक्ति मार्ग के साधन के रूप में उद्घोषित किया—

‘वीणावादन तत्त्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।

तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्गं प्रयच्छति॥’

ऐसी ही घोषणाओं से प्राचीन गुरुकुलों में सामगान जैसे दिव्य संगीत गुंजित होते रहे, प्रवाहित होते रहे। संगीत धार्मिक निष्ठा व अनुभूतियों से जुड़कर बिहार की पावन धरती पर दीर्घकाल से रक्षित रही। यों तो बिहार का हर क्षेत्र संगीत की सुरभि है, सुवासित है; किंतु संपूर्ण प्रदेश की सांस्कृतिक गतिविधियों का हृदय स्थल मिथिला संगीत की साधना, समाहार और आविष्कार की विशिष्ट भूमि रही। ब्रजभूमि की तरह मिथिला में साहित्य और संगीत का अजस्र स्रोत रहा। यहाँ की अमराइयों में, खेत-खलिहानों में, डगर-वीथियों में संगीत की धारा प्रवाहित होती रहती है। चाहे घर में शिशुओं का जन्म हुआ हो अथवा विवाह का मांगलिक अवसर हो; चाहे फसलों का बोना, निराना अथवा काटना, चक्की चलाना आदि घर गृहस्थी के क्रियाकलाप हों, चाहे





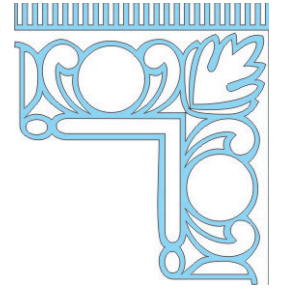


देव-पूजन की शुभ वेला हो, चाहे पर्व-त्योहारों व उत्सवों की घड़ी हो—सभी संगीत से मंडित होते हैं। वहाँ लोकगीतों तथा लोक-धुनों व गीत-शैलियों की इतनी प्रचुर संपदा है कि श्रोता ठगा सा रह जाता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि किसे सुने तथा किसे छोड़े। महेशवाणी, नचारी, लग्नी, समदाऊन, बटगमनी, कोहबर, जेतसए, झूमर जैसी अनेक लोक-संगीत की धुन व भाव बिना आंदोलित किए नहीं रहते।

बिहार की माटी-पानी में लोक-संगीत की विपुल संपदा भरी पड़ी है। बिहार के लोकगीतों की विविधता उसकी भाषा तथा सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण है। बिहार राज्य की बोलियाँ हैं—मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका तथा बज्जिका। इन बोलियों में विभिन्नता अधिक है, समानता कम। मैथिली का क्षेत्र दरभंगा, समस्तीपुर, मधुबनी, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, सहरसा, मधेपुरा, उत्तरी मुंगेर व उत्तरी भागलपुर है। बिहार में भोजपुरी का क्षेत्र आरा, बक्सर, शाहाबाद, छपरा या सारण, चंपारण आदि हैं। बिहार का पटना, गया, हजारीबाग, जहानाबाद, औरंगाबाद आदि क्षेत्र मगही भाषी क्षेत्र हैं। बज्जिका मैथिली तथा भोजपुरी दोनों से प्रभावित बोली है, जिसके अंतर्गत मुजफ्फरपुर, वैशाली, चंपारण का पूर्वी क्षेत्र आता है। लोकगीतों की विपुल रचनाएँ इन क्षेत्रीय बोलियों में भी हुई हैं, जिसमें समता व विविधता दोनों देखी जा सकती हैं। बिहार के समग्र लोकगीतों को निम्न आधारों पर विभाजित कर देखा जा सकता है—

- संस्कार गीत
- ऋतुओं के गीत
- व्रत एवं त्योहारों के गीत
- जाति के गीत
- श्रम गीत





- बाल गीत
- नृत्य गीत
- रस के गीत
- धार्मिक भावना के गीत
- विविध गीत

प्रत्येक संस्कार के दो स्वरूप देखने को मिलते हैं—शास्त्रीय और लौकिक।

संस्कार गीतों का संबंध लौकिक अनुष्ठानों से है। बिहार में पुत्र-जन्मोत्सव के अवसर पर 'सोहर' गाए जाते हैं। सोहर गीतों में पुत्र-जन्म संबंधी उल्लास, बधाई व शुभकामनाओं के भाव निहित होते हैं। भोजपुर और मगध क्षेत्र में जन्मोत्सव के अवसर पर पँवड़िया नाच होता है। पँवड़िया लोग बच्चे के जन्म की बधाई गीतों के द्वारा देते हैं और बधावा माँगते हैं। बिहार के मगही क्षेत्र के अंतर्गत कुछ मुसलिम संस्कार गीत गाए जाते हैं। इनकी भाषा किंचित् खड़ी बोली अथवा उत्तर प्रदेश के लोकगीतों की तरह है। बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में जो सोहर गाए जाते हैं, उनमें एक विशेष राग, लय एवं छंद होता है, जिसे सोहर छंद कहते हैं। तुलसीदास ने भी सोहर छंद की रचना की है, जिसके विधान साहित्यिक हैं। किंतु बिहार के प्रचलित सोहर लोकगीतों में तुक एवं पिंगल शास्त्र के नियमों का अभाव होता है। बिहार सोहर गीत की जाति में 'खेलौना गीत' गाने का प्रचलन है। मात्र सोहर से अंतर इतना है कि जहाँ सोहर पुत्र-उत्पत्ति के पहले गाए जाने लगते हैं, वहीं खेलौना पुत्र-जन्म के उपरांत गाए जानेवाले गीत हैं।

जन्मोत्सव के उपरांत होनेवाले मुंडन, यज्ञोपवीत विवाह के अनेकानेक विधि-विधानों से लोकगीत अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। पूरे संस्कार-गीतों में सर्वाधिक गीतों की संख्या विवाह के गीतों की है। इन विवाह गीतों में शिव-विवाह तथा राम-विवाह के



प्रसंग निश्चित रूप से वर्णित रहते हैं। शिव-विवाह के गीतों में जहाँ शिव और पार्वती के आपस में वाद-विवाद या शिव की बारात आदि का वर्णन रहता है, वहीं राम-विवाह के गीतों में बारात सजाने, बारात प्रस्थान करने, द्वार-पूजा, परिछावन, विवाह और कोहबर में प्रवेश करते हुए सखियों की ठिठोली का वर्णन किया जाता है।

विवाह के अवसर पर मिथिलांचल में 'सम्मरी गीत' गाने की प्रथा है, जिसे 'स्वयंवर' का अपभ्रंश कहा जा सकता है। विवाह के समय जिस घर में कुलदेवता का पूजन, मांगलिक कार्य तथा वर-कन्या का निवास-स्थल होता है, उसे कोहबर कहते हैं। कोहबर की प्रथा बिहार के सभी आंचलिक क्षेत्रों में प्रचलित है तथा इससे संबंधित 'कोहबर गीत' गाने का व्यापक रिवाज है।

बिहार में 'डोमकछ' एक नाट्य लोक-संगीत है, जिसका गायन विवाह के अवसरों पर वर पक्ष की स्त्रियों के सम्मिलित सहयोग से होता है। यह पहले ग्रामीण समाज में एक सामाजिक स्वाँग के रूप में लड़के की बारात जाने के बाद डोम-डोमिनियों द्वारा खेला जाता था। इसी कारण इसका नाम 'डोमकछ' पड़ा। भिखारी ठाकुर की नाट्य रचनाओं में इस परंपरा के प्रसंग मिलते हैं। मिथिला में बेटी की विदाई या अन्य कारुणिक अवसरों पर एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है, जो 'समदाउनि' नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुर प्रदेश में इस गीत को 'समदावन' और मगध क्षेत्र में 'समदन' कहते हैं।

ऋतुओं के गीतों में कजरी महत्त्वपूर्ण गीत शैली है। कजरी का उद्भव बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में हुआ। यों मिर्जापुर की कजरी प्रसिद्ध है, किंतु बिहार की कजरी का अपना ही रंग और स्वाद है। कहरवा और दादरा की लय में ठुमरी गायिकाओं ने कजरी को लोक से अभिजात में संस्कारित किया। वर्षाकालीन लोक-धुनों में सावन, झूला, हिंडोला आदि भी मिथिला तथा बिहार के अन्य अंचलों में प्रचलित हैं। इनमें सावन की





धुन सबसे कठिन है। इसका प्रचलन अब उपशास्त्रीय गेय विधा के ही रूप में रह गया है। बाइयों की गायकी में होरी, चैती, कजरी के साथ सावन का भी प्रमुख स्थान रहा है। कजरी का ही एक रूप मिथिला में मलार नाम से प्रसिद्ध है।

फाग या होली वसंत ऋतु का गीत है। बिहार में मुख्यतया समूह में ही गाया जाता है। फाग गीतों में मुख्यतः प्रेम व अनुराग तत्त्वों की प्रधानता होती है। बिहार में होरी या जोगीड़ा गाने की प्रथा देखी जाती है, जो अन्य प्रदेशों से भिन्न है। बिहार में होरी गाने की प्रथा पुरुषों में ही देखी जाती है। इसमें हर्षोल्लास अधिक रहता है।

चैत्र मास का संगीत भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस मास में गाया जानेवाला शृंगार-प्रधान विलंबित लय का चैता बिहार की विशिष्ट पहचान है। चैता गीतों में शृंगार के साथ करुण-रस एवं मार्मिक व्यथाओं का भी समावेश होता है। चैता गीत उपयुक्त लोकछंद-युक्त होते हैं तथा इसका गायन एकल व सामूहिक दोनों रूपों में होता है। यह गीत प्रकार भी ठुमरी गायिकाओं में अधिक लोकप्रिय हुआ और इसे उप-शास्त्रीय जामा पहनाकर अभिजात संस्कार-मंडित किया गया। चैता गायन का चलन मुख्यतः बिहार के मगही एवं भोजपुरी भाषी क्षेत्र में पुरुषों में पाया जाता है। ढोलक और झाझ पर गाया जानेवाला चैता ही 'घाटों' कहलाता है, जो भोजपुर प्रदेश की विशेषता है। बिहार में होरी, चैती और कजरी गाने का अपना ढंग है, जो अन्य क्षेत्रों से भिन्न है। ये तीनों लोक-संगीत की विधाएँ कालक्रम से ठुमरी के विकास के साथ उनकी सहेली के रूप में उपशास्त्रीय गेय विधा की तरह हिंदुस्तानी संगीत में प्रतिष्ठित हो गईं।

बारहमासा गीत ऋतु-गीतों में बड़ा लोकप्रिय है। इसमें बारहों महीने का बड़ा रुचिकर वर्णन होता है। 'बारहमासा' वस्तुतः वियोग का गीत है। बिहार के गाँव-गाँव में यहाँ की बोलियों में बारहमासा की करुण स्वर-लहरी गूँजती है। भोजपुरी, मगही, मैथिली,





अंगिका, बज्जिका आदि बोलियों में इसका विस्तार हुआ है। बारहमासा का आरंभ आषाढ़ की पहली वर्षा से होता है और अंत जेठ की तपती धूप में। बारहमासे का एक लघु रूप है चौमासा तथा छमासा। जहाँ चौमासों में आषाढ़ से कुँआर अथवा सावन से कार्तिक तक के चार मासों का चित्रण रहता है, वहीं छमासा में छह महीने का। मिथिला, भोजपुर और मगध क्षेत्र में इन गीतों को गाने का अपना अंदाज है।

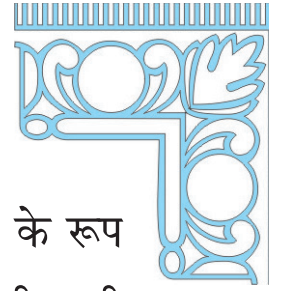
छठ की समाप्ति के बाद कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष में मिथिलांचल क्षेत्र में एक स्त्री प्रधान नाट्य-गीत 'सामा-चकेवा' के गीत विशेष आयोजन कर गाए जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से मिथिला क्षेत्र से प्रभावित मोतिहारी जैसे भोजपुरी-भाषी क्षेत्र में भी इसका प्रचार-प्रसार है।

बिहार के पर्वों में छठ पर्व की बड़ी महिमा है। छठ के गीतों में विशेष रूप से सूर्य के स्वरूप का वर्णन, छठ पूजा की सामग्रियों का वर्णन, पूजा के लिए कठिन विधि-विधान का वर्णन, वंध्या एवं कोढ़ी की दुर्दशा के कारण सूर्य की उपासना का वर्णन होता है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था में हर वर्ग एवं जातियों का विशेष महत्त्व है। गाँव में रहनेवाली प्रत्येक जातियों के लोकदेव हैं, जिनकी शौर्य एवं वीरतापूर्ण गाथाएँ लोक-साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। प्रत्येक जाति को उन पर गर्व है। उनके पराक्रमों से मंडित ये लोकगीत जाति के गीतों की श्रेणी में आते हैं। बिरहा गीत अहीरों द्वारा गाया जानेवाला गीत है। साथ ही बिहार में 'लोरिकी' भी इसी जाति का गीत है।

किसी भी कार्य के संपादन के समय जो गीत गाए जाते हैं, वे श्रम गीत, व्यवसाय गीत या क्रिया गीत की कोटि में आते हैं। बिहार में चक्की चलाकर आटा पीसने के समय स्त्रियाँ अपने श्रम-परिहार एवं मनोविनोद के लिए लगनी गाती हैं। इस गीत को 'जाँतसार' भी कहते हैं। बिहार की ग्रामीण नारियों में खोदा अथवा गोदना पड़ाने का





प्रचलन है। इसे सौभाग्य का चिह्न तथा सौंदर्य वृद्धि के एक महत्त्वपूर्ण प्रसाधन के रूप में मान्यता प्राप्त है। खोदा पाड़ने वाली स्त्री गोदना गोदने के साथ-साथ गीत भी गाती है, जिसे 'खोदा पाड़ने के गीत' कहते हैं। इसी प्रकार खेतों में धान रोपते समय कृषक मजदूरों द्वारा गाए जानेवाले गीत 'चोंचर' कहलाते हैं। उल्लास के साथ कर्मठता के भाव इन श्रम गीतों में विद्यमान रहते हैं। निस्संदेह ये गीत कृषकों एवं मजदूरों के श्रम-परिहार, कार्य-निष्पादन और मनोविनोद के अनन्य साधन हैं।

बाल-जीवन से संबद्ध गीतों को बाल-गीत या शिशु-गीत कहते हैं। भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह बिहार प्रदेश के विविध अंचलों में ऐसे पर्याप्त लोकगीत हैं, जिनका संबंध बालक-बालिकाओं के मनोरंजन तथा उसे सुलाने से है। वे गीत जो मनोरंजन के प्रयोजन से हैं, क्रीड़ा-गीत हैं, जैसे अटकन-मटकन, चोरा-मुक्की, अट्टा-पट्टा, कबड्डी गीत। सुलानेवाले शिशु गीत में लोरी तथा बच्चों को उबटन लगाने के गीत 'अपटोनी गीत' हैं।

नृत्य जब केवल मनोरंजन के लिए नहीं अपितु लोक-जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है, उसमें प्रायः सारा समाज भाग लेता है, 'लोक-नृत्य' कहलाता है। ये लोक-नृत्य संगीत से अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं। मिथिला का विदापत, कीर्तनिया नाच नारदी, झिझिया नृत्य, जट-जटिन, मगध का 'बागुली', पश्चिमी चंपारण जिले के बगहा क्षेत्र का 'सुगना', भोजपुरी क्षेत्र का गवनिहारिन नाच, बिदेसिया नाच, झूमर नृत्य, अंग क्षेत्र का 'बिहुला' इसी कोटि के लोक नृत्य हैं, जिससे संबंधित विपुल संख्या में लोकगीत उपलब्ध हैं।

काव्य की तरह लोकगीतों की आत्मा भी रस से परिपूर्ण है। जितनी रसमयता इन लोकगीतों में है, उतनी अन्यत्र नहीं। एक-एक लोकगीत क्या है, रस से लबालब भरा

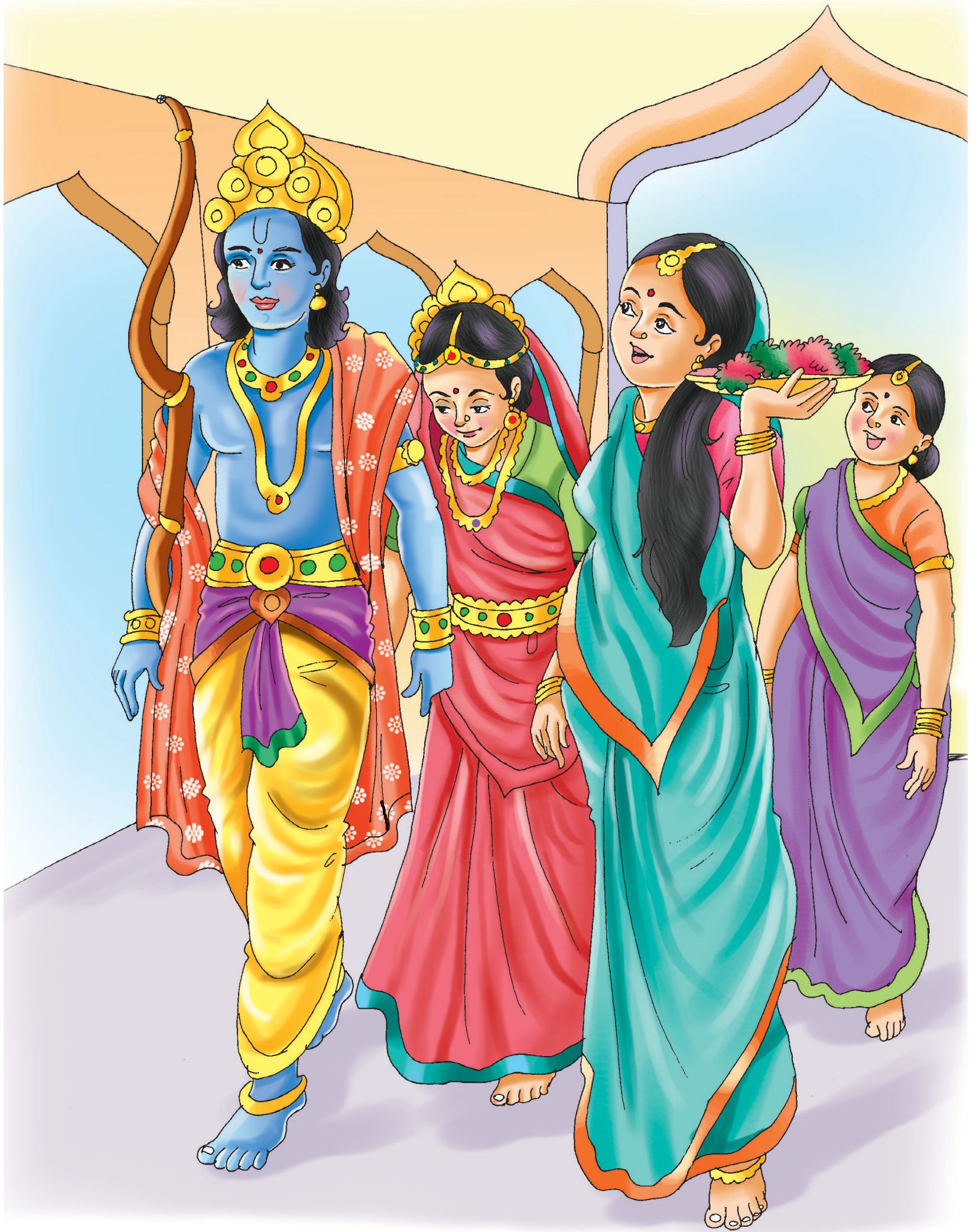


हुआ प्याला है, जिसके पीने से प्यास बुझती नहीं, बल्कि और भी बढ़ जाती है। बिहार के लोकगीतों में रस की पयस्विनी अविरल गति से प्रवाहित होती रहती है। शृंगार-रस के गीतों में विवाह के गीत फागु, चैतावर, झूला, झूमर, तिरहुति आदि प्रमुख हैं। परिछन गीत, नचारी, जट-जटिन, डहकन आदि में हास्य रस के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं। नचारी और महेश वाणी में अद्भुत तथा भयानक रस है। धार्मिक गीतों, भरथरी, गोपीचंद आदि गाथात्मक गीतों में शांत तथा भक्ति रस आल्हा, लोरिकायन तथा सल्हेस आदि में वीर रस और समदाउन में करुण रस उपलब्ध है।

देवी-देवताओं की आराधना से संबद्ध गीत धार्मिक गीत हैं। बिहार के लोक-जीवन में संस्कृति के उन्नयन में धर्म का बहुत बड़ा सहयोग रहा है। यही कारण है कि बिहार में भाँति-भाँति के धार्मिक गीत उपलब्ध हैं। इन गीतों का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, साथ ही मांगलिक महत्त्व भी है। इन धार्मिक गीतों में ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। सगुण गीतों में गोसाउनि गीत, नचारी, महेश वाणी, कीर्तन, विष्णुपद, पराती, साझ, गंगा के गीत, शीतला के गीत, देवी के गीत तथा निर्गुण गीतों का अलग से कोई गीत कोटि निर्धारित नहीं है। किंतु कतिपय लोक-भजनों के अंतर्वस्तु निर्गुण उपमानों को निर्देशित करते हैं। परिमाण की दृष्टि से सगुण भक्ति के गीत जितनी अधिक संख्या में बिहार के ग्राम्य गीतों में मिलते हैं, उतनी संख्या में निर्गुण भक्ति के गीत नहीं।

विविध गीतों की कोटि में झिझिया के गीत, झररी के गीत, नारी स्वातंत्र्य के गीत, समाज-सुधार के गीत, प्रबंधात्मक गाथा गीत, लोक-नाट्य गीत आदि आते हैं। भोजपुर अंचल के पूर्वी गीत, झूमर, विदेसिया, बड़ोहिया, मेलों का गीत तथा मिथिलांचल का तिरहुति, बटगमनी, नचारी, महेश वाणी के साथ ग्रामीण विकास से संबंधित विकास गीत,







संदेश गीत, मंत्र गीत, आंदोलन गीत व देशभक्ति से संबंधित गीत इसी श्रेणी के गीत हैं।

महाकवि मैथिल कोकिल विद्यापति का युग लोकगीतों का स्वर्ण युग कहा जाता है। विद्यापति के अधिकांश गीत ऐतिहासिक परंपरा और लोक-व्यवहार के कारण शुद्ध लोकगीत की श्रेणी में आ गए। विद्यापति के गीत उच्चकोटि के हैं। उनका प्रचार मिथिला के घर-घर में है। विशेषकर ललनाओं के बीच उनका प्रचार सबसे अधिक है। विद्यापति के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता रही जन्म से लेकर मरण तक प्रायः सभी संस्कारों के अवसर पर उनका गायन।

पूर्वी लोकधुन का जन्म भोजपुरी भाषी क्षेत्र छपरा में हुआ, ऐसी मान्यता है। इस पूर्वी को बनारस की तवायफी ने अपनाकर काफी लोकप्रिय बनाया। पूर्वी धुनों को बिहार के ही सपूत उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने अपने शहनाई-वादन से लोकप्रिय बनाया। इन पूर्वी गीतों के बहुत ही मशहूर रचनाकार महेंद्र मिसिर हुए हैं। पूर्वी के निर्माता छपरा के पकड़ी ग्राम के महावीर मिश्र थे।

भोजपुरी-भाषी क्षेत्र छपरा के भिखारी ठाकुर ने लोकगीतकार तथा गायक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। वह न केवल लोकगीतों के रचनाकार तथा गायक थे, अपितु भरतमुनि की परंपरा में लोक-नाट्य प्रयोक्ता भी थे। बिहार में लोक-संगीत तथा लोक-नाट्य कला के क्षेत्र में बीसवीं सदी में भिखारी ठाकुर सरीखा बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न व्यक्तित्व दूसरा दृष्टिगत नहीं होता। वास्तव में बिहार के लोक-संगीत को समृद्ध करने में दो ठाकुरों विद्यापति ठाकुर तथा भिखारी ठाकुर—के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

